आज यहीं, तो कल कहीं

पूंजी का पलायन
और
मज़दूरों के अधिकार

होंडा पावर प्रोडक्ट्स, रुद्रपुर की कहानी

वर्कर्स सोलिडेरिटी
और
पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक राइट्स
दिल्ली, अप्रैल 2002

25 फरवरी 2002 को रुद्रपुर, उत्तरांचल में स्थित 'होंडा सिएल पॉवर प्रोडक्ट्स लिमिटेड' की जरूरी मशीनरी को मैनेजमेंट ने फैक्टरी से हटाने तथा उसे ग्रेटर नोएडा स्थित फैक्टरी में स्थानांतरित करने की कोशिश की। कर्मचारियों ने इस कोशिश को नाकाम कर दिया और उसके बाद से वे लगातार फैक्टरी गेट पर नज़र रखे हुए हैं। इस इरादे से कि मशीनरी को वहां से हटाने में अड़चनें ना आऐं, मैनेजमेंट ने अगले ही दिन इन मशीनों पर काम करने वाले 33 कर्मचारियों का तबादला कर डाला। कर्मचारियों ने इस तबादले की खिलाफत की। 7 मार्च के दिन, इन 33 लोगों को फैक्टरी में दाखिल होने से रोका गया और उनके हाथों में बर्खास्तगी के खत थमा दिए गए। अगली सुबह सभी कामगारों को फैक्टरी गेट पर ही रोक कर एक ऐसे हलफनामे पर दस्तखत करने के लिए कहा गया जिसमें लिखा था कि वे मशीनरी के हटाए जाने और बर्खास्तगी के आदेशों का विरोध नहीं करेंगे। जब उन्होंने दस्तखत करने से इंकार किया तो उन्हें फैक्टरी में घुसने से रोका गया। उस दिन से लेकर आज तक 255 कर्मचारी दिन रात गेट पर चौकसी दिए बैठे हैं।

इस तरह के गतिरोध की स्थिति उत्पन्न होने की परिस्थितियों, मजदूरों के अधिकार तथा इस समस्या का हल ढूंढने में सरकार तथा श्रम विभाग के रवैये और भूमिका की छानबीन के इरादे से 1-2 अप्रैल को एक तीन-सदस्यीय टीम ने रुद्रपुर का दौरा किया। पी.यू.डी.आर. और वर्कर्स सोलिडेरिटी की टीम ने यूनियन, मैनेजमेंट, जिला अधिकारी तथा श्रम आयुक्त से इस सिलसिले में बातचीत की।

होंडा फैक्टरी रुद्रपुर-किच्छा रोड़ पर स्थित है, जो उधमसिंह नगर, उत्तरांचल के जिला मुख्यालय रुद्रपुर से करीब 3-4 किलोमीटर की दूरी पर है। पोर्टेबल जेनसेटों का उत्पादन करने वाली यह फैक्टरी इस जिले की बड़ी कंपनियों मे से एक है। उत्तरांचल में सार्वजनिक और निजी कुल 1033 फैक्ट्रियों में से 461 रुद्रपुर में हैं, जिनमें BHEL और पेप्सी भी शामिल हैं।

इस कंपनी की स्थापना 1985 में श्रीराम ग्रुप और जापान की होंडा कंपनी के बीच सहयोग से हुई थी। जिसे श्रीराम होंडा पॉवर इक्विपमेंट लिमिटेड के नाम से जाना गया। यहां उत्पादन 1987 में शुरू हो गया था। वर्ष 1998 में श्रीराम ग्रुप इससे अलग हो गया। उसके बाद से यह पूरी तरह जापानी कंपनी होंडा द्वारा संचालित की जा रही है।

पहले पांच साल, कंपनी घाटे में चलती रही। वर्ष 1991-92 में सरकारी रियायत के बावजूद इसे बेचने तक की नौबत आ गई। लेकिन उसके बाद से कंपनी ने हाल में सालाना 20 करोड़ रुपए के मुनाफे दिखाने शुरू कर दिए। वर्ष 2000-01 में इसे 19.29 करोड़ रुपए का मुनाफा हुआ। इसका उत्पादन भी सालाना 1.05 लाख जेनसेटों तक पहुंच गया।

उत्पादन के बदलते तरीके

1997-98 रुद्रपुर फैक्टरी और इसके कामगारों के लिए एक निर्णायक वर्ष था। अल्यूमीनियम शॉप को हटाए जाने के संबंध में चल रहा वर्तमान विवाद एक व्यापक तर्क के साथ गुंथा हुआ है। एक ऐसा तर्क जो विश्वभर में आम हो चला है। पिछले लगभग पांच सालों में तीन प्रक्रियाऐं साथ-साथ हुई हैं। पहली, कि कंपनी ने अलग-अलग जगहों पर फैक्ट्रियां स्थापित कीं। 1997 में, पोंडिचेरी में एक असेंवली प्लांट स्थापित किया गया। ताकि सरकार द्वारा पोंडिचेरी में हर नए उद्यम को टैक्स में सात वर्ष तक दी जाने वाली छूट का फायदा उठाया जा सके। हाल ही में अभी एक साल पहले ग्रेटर नोएडा में तीसरा प्लांट लगाया गया। अंतिम चरण में किया जाने वाला, तकरीबन 60 से 70 प्रतिशत असेंवली का काम अब पोंडिचेरी में किया जा रहा है, जो कि पहले रुद्रपुर में ही हुआ करता था। जेनसेट के लगभग सभी स्पेयर पार्ट्स अब ग्रेटर नोएडा स्थित फैक्टरी में बनाए जा रहे हैं। फाइनल चैकिंग का अधिकतर काम पोंडिचेरी में होता है। जाहिर है इससे रुद्रपुर फैक्टरी के महत्व में कमी आई है, जहां अब केवल मशीन का काम किया जाता है। इसके अलावा असेंवली के कुल काम का 40 प्रतिशत काम भी यहीं पर किया जा रहा है। साथ ही जेनरेटर के कुछ हिस्सों को भी यहीं बनाया जाता है। 1998 में, अल्यूमीनियम शॉप में काम को केवल एक शिफ्ट तक समेट लिया गया। असेंवली प्लांट में भी काम को घटाकर केवल एक शिफ्ट लायक बना दिया गया। और अब वे

अल्यूमिनियम के पूरे प्लांट को ही यहां से हटा देना चाहते हैं।

दूसरा, कंपनी ने उत्पादन तथा प्रोसेसिंग के कुछ कामों को बाहर ठेके पर देकर करवाना शुरू किया। जैसे वेल्डिंग, तथा अंडरफ्रेम की पेंटिंग, जिन्हें पहले रुद्रपुर फैक्टरी में ही किया जाता था। आयात के अतिरिक्त, अभी जेनसेट के कई हिस्सों को बाहर ठेके पर देकर बनवाया जा रहा है। मफलर और स्टार्टर बनाने का काम फरीदाबाद स्थित एक कंपनी करती है। इन्हें बनाने वाले कोई तीस मजदूरों की छुट्टी कर दी गई थी। यह कार्यशैली ना केवल मौजूदा कर्मचारियों के लिए घातक सि) हो रही है, बल्कि यह बदलाव सस्ते और कम संगठित मजदूरों को प्राथमिकता देने की दिशा में जा रहा है। उदाहरण स्वरूप, ऐसी ही एक कंपनी का नाम है 'अल्यूमीनियम प्वाइंट' जहां दस साल का अनुभवी एक सुपरवाईजर 2,500 रूपए प्रतिमाह पर काम करता है, जो कि होंडा में इसी स्तर के कर्मचारी का एक-चौथाई से भी कम वेतन है। यूनियन की तरफ से वर्ष 2001 में श्रम विभाग को बार-बार भेजे गए पत्रों में इसका जिक्र है कि ''कई महत्वपूर्ण कंपोनेंट तथा प्रक्रियाएं वेल्डिंग, वेल्ड शॉप में मफलर लाइन, स्टार्टर केस, अंडरफ्रेम की पेंटिंग तथा अल्टरनेटर विभाग के कंट्रोल पैनल के काम को ठेके पर देकर करवाया जा रहा है.... जिसकी वजह से इस साल में ही 200 से अधिक दिहाड़ी मजदूरों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।'' परंतु इतना समय बीत जाने के बाद भी श्रम विभाग पर इन दरख्वास्तों का कोई असर पड़ता नहीं दिखाई देता।

तीसरा, श्रम नीति में स्पष्ट बदलाव आया है। ठेका मजदूरी के इस्तेमाल में बढ़ौतरी हुई है। पहले केवल सुरक्षा और कैंटीन कर्मचारी ठेके पर हुआ करते थे। फिर ठेका प्रथा को विस्तारित कर इसमें माली, पैंटरी कर्मचारी, ड्राइवर तथा कंपनी गैस्ट हाउस के कर्मचारियों को भी शामिल कर लिया गया। इन सभी श्रेणियों के कर्मचारी पहले परमानेंट हुआ करते थे। पिछले तीन-चार सालों से परमानेंट कर्मचारियों की भर्ती पर लगभग रोक लगा दी गई है, जबकि इस दौरान उत्पादन में लगातार बढ़ोतरी ही हुई है। नतीजतन, कैजुअल मजदूरों को निकाल बाहर किया गया। हालांकि यह कहना मुश्किल है कि यह किस हद तक हुआ।

वर्तमान विवाद

अल्यूमीनियम प्लांट को ग्रेटर नोएडा में शिफ्ट करने की जो प्रक्रिया फरवरी 2002 में शुरू हुई उसको लेकर फैसला महीनों पहले ले लिया गया था। वर्ष 2001 में उत्पादन तीन दफा अलग-अलग समय पर रोका गया, कैजुअल मजदूरों को निकाला गया तथा 50 परमानेंट कर्मचारियों को प्रोडेक्शन लाइन से हटाकर गैर उत्पादन कार्यों पर लगाया गया, परंतु साल के अंत तक आते-आते उत्पादन में तेजी लाई गई ताकि शिफ्टिंग के

दौरान होने वाले वक्त की बर्बादी की भरपाई की जा सके।

25 फरवरी को मैनेजमेंट ने अल्यूमीनियम शॉप की मशीनों के कलपुर्जों को खोलना शुरू कर दिया, परंतु कर्मचारियों ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। अन्य मजदूरों ने भी मशीनों को हटाने वाली क्रेनों तथा फोर्क लिफ्ट को फैक्टरी में जाने से रोका। अगली सुबह, इस शॉप के 34 कर्मचारियों को बेकार बिठाकर रखा गया और उनका तबादला अन्य विभागों जैसे स्टील प्लांट, अल्टरनेटर तथा प्रेस शॉप में कर दिया गया। उन्हें इस तबादले से इंकार था। इन शॉपस में इनके लिए कोई काम नहीं था। वास्तव में जहां उनका तबादला किया गया था वहां पहले से ही कई कर्मचारी काम ना होने की सूरत में हाथ पर हाथ धरे बैठे थे।

27 फरवरी को मैनेजमेंट ने राज्यपाल का एक आदेश दिखाते हुए यह आग्रह किया कि होंडा फैक्टरी में किसी किस्म की हड़ताल या तालाबंदी पर पाबंदी है। यह आदेश हालांकि नवंबर 2001 में ही जारी कर दिया गया था, परंतु इसको इस्तेमाल करने के लिए वह एक उपयुक्त समय के इंतजार में बैठी थी। नवंबर में मैनेजमेंट ने इस आदेश की किसी को भनक भी नहीं लगने दी, क्योंकि उस वक्त उत्पादन का स्तर अपने लक्ष्य से भी ऊपर चल रहा था। और फिर 5 मार्च के दिन, मैनेजमेंट ने कर्मचारियों को धमकाने के लिए 70-80 अतिरिक्त सुरक्षा गार्ड भी तैनात कर दिए।

जिन कर्मचारियों का तबादला कर दिया गया था, 6 मार्च को वे अल्यूमीनियम शॉप में जाकर जबरदस्ती मशीनों पर काम करने लगे। उसी दिन स्टॉफ अफसरों और सुपरवाइजरों को फैक्टरी में रात भर के लिए रोक लिया गया ताकि मशीनों को पैक किया जा सके। अगली सुबह, अल्यूमीनियम शॉप के 32 कर्मचारी निकाल दिए गए (एक को बाद में निकाला गया, जिसे मिलाकर यह संख्या 33 होती है)। उन्हें निकालते वक्त किसी भी प्रकार का नोटिस नहीं दिया गया और न ही किसी किस्म की अनुमति ली गई। यह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 का खुला उल्लंघन है। इस शॉप के तमाम कैजुअल मजदूरों को फरवरी में पहले ही निकाल बाहर कर दिया गया था। जब अन्य कर्मचारियों ने इस मनमानी का कारण जानना चाहा तो सभी को गेट से बाहर कर फैक्टरी के गेट बंद कर दिए गए।

7 मार्च को, उप-श्रम आयुक्त, मैनेजमेंट, तथा यूनियन के बीच हुई त्रिपक्षीय बैठक में यह फैसला लिया गया कि सभी कर्मचारियों को काम पर वापिस ले लिया जाएगा और अगले ही दिन से काम दुबारा से शुरू होगा। लेकिन जब सुबह कर्मचारी फैक्टरी पहुंचे तो गेट पर उन्हें एक घोषणा चिपकी हुई मिली, जिस पर उन्हें फैक्टरी में दाखिल होने से पहले दस्तखत करने के लिए कहा गया था। घोषणा कुछ इस प्रकार थी, कि उन्होंने

गैरकानूनी हड़ताल में हिस्सा लिया है, कि वे मशीनों की शिफ्टिंग में कोई बाधा नहीं डालेंगे, बल्कि उसमें मदद करेंगे, कि वे 32 परमानेंट कर्मचारियों के निकाले जाने का कोई विरोध नहीं करेंगे, और कि ऐसा कुछ भी करने पर उनको भी नौकरी से बर्खास्त किया जा सकता है। यह घोषणा पूरी तरह से गैरकानूनी और असंवैधानिक है। इस गैरकानूनी घोषणा को गतिरोध बरकरार रखने, कर्मचारियों को फैक्टरी से बाहर धकेलने, मशीनरी को शिफ्ट करने तथा फिर शिफ्टिंग को लेकर मोल-भाव करने के मकसद से तैयार किया गया था। 8 मार्च से गतिरोध की यह प्रक्रिया अपने अंजाम तक पहुंच गई लगती है।

मैनेजमेंट हालांकि इसे हड़ताल का दर्जा देती है। इस बात को नज़रंदाज करते हुए कि उन्होंने ही ऐसी स्थितियां पैदा की जिसकी वजह से उत्पादन लगभग ठप्प हो गया लगता है। कर्मचारी फैक्टरी गेट के बाहर बैठे हैं क्योंकि उन्हें अंदर नहीं जाने दिया जा रहा। मशीनों को वहां से हटाए जाने का वे अब भी विरोध कर रहे हैं। हालांकि पहले से तैयार जैनसेटों को वे ले जाने से नहीं रोक रहे हैं। फैक्टरी गेट से दो सौ मीटर की दूरी तक कर्मचारियों के जमाव को रोकने के लिए मैनेजमेंट ने अदालत का आदेश लिया। लेकिन होंडा फैक्टरी गेट के सड़क के दूसरी तरफ एक निजी जमीन पर टूटी-फूटी छत के नीचे मजदूर जमा होते हैं।

1 अप्रैल को 'दैनिक जागरण' के पहले पृष्ठ पर होंडा के मैनेजमेंट ने एक इश्तेहार छपवाया, जिसमें कहा गया था कि किसी भी कर्मचारी को न तो काम से निकला जाएगा और न ही शिफ्टिंग की वजह से उनकी आमदनी पर कोई असर पड़ेगा। उनका तबादला भी ग्रेटर नोएडा स्थित फैक्टरी में नहीं किया जाएगा। फैक्टरी के एक प्रतिनिधि ने हमारी टीम को बताया कि फैक्टरी में कुल 11 शॉपस् हैं, जिनमें से केवल एक को ही शिफ्ट किया जा रहा है। इस प्रतिनिधि द्वारा शिफ्टिंग का जो मुख्य कारण बताया गया वह यह था कि कंपनी ग्रेटर नोएडा से रुद्रपुर तक होने वाले फिजूल के ट्रांसपोर्ट खर्चे को बचाना चाहती है। अल्यूमीनियम शॉप की शिफ्टिंग का दूसरा कारण यह बताया जा रहा है कि इस शॉप का इस्तेमाल फिर होंडा स्कूटर और कारों के लिए भी किया जा सकेगा क्योंकि उनकी फैक्ट्रियां ग्रेटर नोएडा के आसपास हैं। इस प्रतिनिधि के मुताबिक इन्वर्टर की बढ़ती बिक्री की वजह से जेनसेट की बिक्री पर भारी असर पड़ा है। उनका यह भी मानना है कि अर्थव्यवस्था चूंकि वैसे ही बुरे दौर से गुज़र रही है जिसकी वजह से माल की बिक्री दर में ठहराव आ गया है। ऐसी स्थिति में लागत को कम करने के लिए कदम उठाने जरूरी हो गए हैं। लेकिन मैनेजमेंट द्वारा अदालत में दिए गए लिखित बयान के मुताबिक कंपनी के मुनाफे में नाममात्र की ही कमी आई है, जो 1998 में 20.70 करोड़ रूपए था, 1999 में 20.14 करोड़ रूपए और 2000-01 में 19.29 करोड़ रूपए रहा। इस तरह हम

पाते हैं कि मुनाफे में 5 प्रतिशत से भी कम की कमी आई। यह कमी भी डेप्रीसिएशन की वजह से अधिक है। जबकि बिक्री और कुल मुनाफा ऊँचा ही रहा है। कंपनी द्वारा केवल अधूरी तस्वीर ही प्रस्तुत की जा रही है। जैसे इस शॉप में सवाल सिर्फ उन परमानेंट कर्मचारियों का ही नहीं है, बल्कि उन 71 कैजुअल मजदूरों का भी है जिन्हें पहले ही नौकरी से निकाल दिया गया है। और उनको दुबारा नौकरी मिलने की कोई संभावना नज़र नहीं आती। वे या तो बेकार घूम रहे हैं या फिर छोटे-मोटे धंधे कर इन बुरे वक्तों में किसी तरह अपनी जीविका चला रहे हैं। इसके अलावा ऐसी कई शॉपस् हैं जिनका उत्पादन प्रक्रिया में अल्यूमीनियम शॉप से सीधा संबंध है। इसलिए अगर अल्यूमीनियम शॉप को यहां से हटा लिया जाता है तो इसका सीधा प्रभाव दूसरी शॉपस् पर भी पड़ेगा। जैसे कि टूल रूम, स्पेयर पार्टस, मैंटेनेंस, स्टोर, आउट प्लांट क्वालिटी, पॉवर हाउस तथा रोटर शैफ्ट के कर्मचारियों पर। जिन अनुभवी और कुशल कर्मचारियों से हमारी बातचीत हुई उनके मुताबिक अल्यूमीनियम शॉप इस फैक्टरी की रीढ़ की हड्डी के समान है। इस क्षेत्र में होंडा के लिए कुछ पार्टस बनाने वाली कंपनियों के मजदूरों पर भी इसका बुरा असर पड़ेगा।

यही कारण है कि अल्यूमीनियम शॉप के हटाए जाने से उपजा यह विवाद इतना महत्वपूर्ण हो गया है। कर्मचारियों का मानना है कि मैनेजमेंट की रणनीति यही है कि काम को एक-एक कर यहां से शिफ्ट कर लिया जाए। इससे कर्मचारियों की संख्या में धीरे-धीरे कमी आएगी और तब उनका प्रतिरोध भी उतना प्रभावकारी नहीं रह पाएगा। उसके बाद होंडा पूरी फैक्टरी को ही बंद कर डालेगी।

मजदूर आंदोलन को कमजोर करना

रुद्रपुर में यूनियन हमेशा से ही हरकत में रही है। वर्ष 1998 में अपनी स्थापना के शुरूआत से ही यह संघर्ष में जुटी है। लेकिन इससे पहले कि यूनियन का पंजीकरण हो पाता, मैनेजमेंट ने अपनी पिट्ठू यूनियन खड़ी कर डाली। इस यूनियन में सिर्फ परमानेंट कर्मचारी ही शामिल थे। कई कर्मचारियों ने बड़ी चालाकी से इस यूनियन की सदस्यता हासिल कर ली और फिर चुनाव करवाकर इस पर अपना अधिकार जमा लिया। इस तरह श्रीराम होंडा श्रमिक संगठन का जन्म हुआ, परंतु इसमें दिहाड़ी मजदूरों को शामिल नहीं किया गया था।

1992 में संगठन ने कर्मचारियों के लिए यातायात की सुविधा की मांग की। इसके साथ-साथ उन्होंने ग्रेड्स को सही करने तथा कवाड़ को बेचने का अधिकार कर्मचारियों को दिए जाने की भी मांग की। मैनेजमेंट ने इन सभी मांगों को मानने से इंकार कर दिया। कर्मचारियों ने काम जारी रखा लेकिन तभी जेनसेट का नया मॉडल आया, जो मैनेजमेंट के साथ उत्पादन समझौते का हिस्सा नहीं था। कर्मचारियों ने इस नए मॉडल को बनाने

से इंकार कर दिया तथा उन्हें कुछ और फायदे दिए जाने की मांग की। करीब 15-20 कर्मचारियों को नौकरी से सस्पेंड कर दिया गया। और मैनेजमेंट ने तीन दिन के लिए तालाबंदी की घोषणा कर दी। लेकिन बाद में इनमें से अधिकतर मांगों को मान लिया गया।

यूनियन ने परमानेंट, कैजुअल, अप्रेंटिस तथा ठेका मजदूरों के बीच एकता का आह्वान किया। ठेका मजदूरों को अपने साथ लेने के संबंध में हालांकि उसे अधिक सफलता नहीं मिल पाई। इस एकता के केंद्र में जो मांग थी वह यह कि अगर कंपनी को परमानेंट कर्मचारी नियुक्त करने ही हैं तो उन्हें कैजुअल मजदूरों में से ही चुना जाना चाहिए। इस मांग पर कुछ सालों तक काफी हद तक अमल करवाया जाता रहा।

बंटवारे की राजनीति

जनवरी 2002 तक होंडा में लगभग 875 कर्मचारी कार्यरत थे, जिनमें 125 अफसर और प्रशासनिक स्टाफ भी शामिल हैं। फैक्टरी में 255 परमानेंट कर्मचारी काम करते हैं, जिनमें कोई महिला नहीं है। उन्हें एल-1 से एल-9 तक की श्रेणियों में बांटा गया है, जिनकी वेतन सीमा लगभग 8,000 रूपये से 11,000 रूपये के बीच है। एक ग्रेड से दूसरे ग्रेड में तरक्की पाना पूरी तरह मैनेजमेंट की मर्जी पर निर्भर है। हमारी टीम की कुछ ऐसे कर्मचारियों से मुलाकात हुई जो पिछले दस सालों से एल-2 या एल-3 पर अटके हुए हैं। अगर मैनेजमेंट की कृपादृष्टि आप पर से उठ चुकी है तो समझ लीजिए कि आजीवन, नहीं तो कम से कम 8 से 12 साल तो आपको इंतजार करना ही पड़ेगा। इसी मनमानी के चलते यूनियन अध्यक्ष, राम विलास शर्मा का प्रमोशन 6 वर्षों तक रोक कर रखा गया।

किसी भी निर्धारित समय में फैक्टरी में 250-300 कैजुअल मजदूर काम कर रहे होते हैं। परमानेंट कर्मचारियों के समान वे भी प्रोडक्शन लाइन पर काम करते हैं। कुछ महीनों तक लगातार रोज़गार दिए जाने के बाद उन्हें कम से कम तीन महीने का ब्रेक दिया जाता है। इस दौरान मजदूरों के एक नए दस्ते को काम पर लगा लिया जाता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों के तहत् किसी भी कैजुअल मजदूर को परमानेंट किए जाने के लिए पिछले बारह महीनों में निरंतर 240 दिन काम करना आवश्यक है। लेकिन इस अदला-बदली द्वारा कैजुअल मजदूरों के लिए इस शर्त को पूरा कर पाना असंभव बना दिया जाता है। होंडा में कार्यरत कुछ कैजुअल मजदूरों को यहां पर काम करते हुए 9-10 वर्ष बीत चुके हैं, जबकि अधिकांश मजदूर यहां कम

से कम पिछले 6 सालों से है। कैजुअल और परमानेंट मजदूरों के वेतन में काफी अंतर है। सबसे निचले दर्जे यानि एल-1 के कैजुअल मजदूर की आमदनी 2,265 रूपये महीना है, जो कि न्यूनतम वेतन से भी कम है। इसकी अपेक्षा, उसी स्तर के परमानेंट कर्मचारी की कमाई 8,000 से 9,000 रूपये माहवार के बीच है।

मैनेजमेंट का दावा है कि पी.एफ., ई.एस.आई., कैंटीन और पानी का खर्चा मिलाकर, कम्पनी हर कर्मचारी पर 13,600 से 14,000 रूपये तक खर्च करती है। लेकिन कैजुअल मजदूरों को ई.एस.आई. की सुविधा से वंचित रखा जा रहा है, जो कि कानून का सीधा उल्लंघन है। उन्हें सालाना अवकाश भी मुहैया नहीं करवाया जाता है, क्योंकि उन्हें कई वर्षों तक दिहाड़ी मजदूर बना कर रखा जाता है।

कंपनी लगभग 50 अपरेंटिसों को भी काम पर रखती है जिनमें से ज्यादातर आई.टी.आई. से ट्रेनिंग लिए हुए होते है। काम में कोई अंतर ना होते हुए भी उन्हें मात्र 900-1,000 रूपये पारिश्रमिक के तौर पर दिए जाते है। कुछ अपरेंटिसों से 2-3 साल कैजुअल मजदूरों का काम लिया जाता है, और इसके पश्चात् ही उनके अपरेंटिसशिप की वर्ष भर की अवधि पूरी होने दी जाती है। मैनेजमेंट इतने धड़ल्ले से यह गैरकानूनी गतिविधियाँ कर पाती है क्योंकि अपने इंस्टीट्यूट से डिग्रियाँ पाने के लिये आई.टी.आई. अपरेंटिसों के लिए एक साल की अपरेंटिसशिप करना अनिवार्य है।

इसके अतिरिक्त कम्पनी में 100-150 ठेका मजदूर है, जिनमें सुरक्षा गार्ड, कैंटीन कर्मचारी, माली और ड्राइवर शामिल है। इनमें से अधिकांश मजदूर स्थाई प्रकृति के कामों में कार्यरत है। इन्हें ज्यादा से ज्यादा न्यूनतम वेतन या उससे भी कम मिलता है।

यह केवल वेतन खर्च बचाने के हथकंडे नहीं है, बल्कि मजदूरों को अलग-अलग श्रेणियों में बांट कर रखने, उनकी एकता और संगठन को चोट पहुंचाने की साजिश है। अभी चल रहे संघर्ष के दौरान फैक्टरी के सामने बैठे मजदूरों पर एक नजर दौड़ाने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। वहां सिर्फ परमानेंट कर्मचारी ही दिखाई देते है: कैजुअल मजदूरों का कोई नामोनिशान नहीं नजर आता। उनका दर्जा और आर्थिक स्थिति, उन्हें संघर्ष में जोड़ने की जगह, किसी भी अस्थाई काम की तलाश में जुटने पर विवश कर देती है।

मैनेजमेंट और कर्मचारियों के बीच वेतन तथा उत्पादकता के मसले को लेकर लगातार विवाद चलता रहा है। ये विवाद 1990, 1993, और 1999 में उठे। यूनियन द्वारा मांगों को मैनेजमेंट के समक्ष रखा जाता जिस पर मैनेजमेंट महीनों तक विचार विमर्श तक के लिए हामी ना भरती। और फिर समझौतों को लगातार टालती रहती। सरकारी अफसरों से जब भी संपर्क किया जाता है, वे हस्तक्षेप करने से इंकार कर देते हैं। इस फैक्टरी में सबसे लंबा संघर्ष 1999 में वेतन को लेकर हुआ। यूनियन ने अपनी मांगें मैनेजमेंट के समक्ष रखीं, जिसमें कैंटीन स्टॉफ, सफाई कर्मचारी तथा लोडरों के बीच ठेका प्रथा को खत्म करने की मांग भी शामिल थी। लेकिन मैनेजमेंट को इन मांगों के मुत्तालिक यूनियन से मिलने तक से इंकार था। अगस्त 1999 में मजदूरों ने आठ घंटे वाली शिफ्ट में चार घंटे की टूल डाऊन हड़ताल शुरू कर दी। इसके बाद मैनेजमेंट ने कर्मचारियों पर तमाम तरह के दबाव डाले और उनमें फूट डालने की भी कोशिश की - पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों के कर्मचारियों के बीच फूट, परमानेंट, ठेका तथा कैजुअल मजदूरों के बीच फूट। इस तरह की हरकतें मैनेजमेंट ने बार-बार कीं और अब तक करती आ रहीं है। कर्मचारियों द्वारा टूल डाऊन हड़ताल एक महीने तक चलती रही। उसके बाद मैनेजमेंट ने तालाबंदी की घोषणा कर डाली, जो 63 दिन तक चली। अंत में वेतन को लेकर एक समझौता हुआ, जिसमें परमानेंट कर्मचारियों की तन्ख्वाह में 3 हजार रूपए का इजाफा हुआ। हालांकि यूनियन को ठेका मजदूरों से संबंधित अपनी मांग को वापिस लेना पड़ा।

ऊपर बयान किए गए बाकिये से यह साफ जाहिर हो जाता है कि शिफ्टिंग के पीछे जो मकसद छिपा है वह सिर्फ लागत कम करने तक सीमित नहीं है। शिफ्टिंग के संदर्भ में यूनियन की तरफ इशारा करते हुए एक मैनेजर को कुछ कर्मचारियों से यह कहते पाया गया कि "हम इन विषाक्त जीवाणुओं को अपने साथ नहीं ले जायेंगें।" इस यूनियन ने इस क्षेत्र में मजदूर संगठनों के एक फेडरेशन के गठन में भी अहम् भूमिका निभाई हैं। इस फेडरेशन को 'संयुक्त मजदूर संघर्ष मोर्चा' के नाम से जाना जाता है, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्रों जैसे FCI और LIC की यूनियनें भी शामिल हैं। यह कंपनियों के लिए काफी आम बात है कि जहां मजदूर अधिक संगठित हों वहां से हटकर वे उन क्षेत्रों में जाना पसंद करती हैं जहां ऐसी स्थितियां नहीं हैं। नोएडा-गुड़गांव औद्योगिक बेल्ट में होंडा की तमाम कंपनियों में से केवल एक, हीरो होंडा मोटरसाइकिल, में ही यूनियन कहलाने लायक कोई यूनियन है। शिफ्टिंग और फैक्टरी के बंद किए जाने का खतरा केवल रुद्रपुर फैक्टरी यूनियन पर ही नहीं मंडरा रहा है, बल्कि यह इस इलाके में मजदूरों के आंदोलनों पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ेगा। यही कारण है कि सिर्फ फैक्टरी की मैनेजमेंट ही नहीं, बल्कि इलाके के सभी फैक्टरी मालिक इस शिफ्टिंग का समर्थन कर रहे हैं।

सरकारी संस्थाओं का नजरिया

उधमसिंह नगर के जिलाधीश से बात करते हुए यूँ महसूस होता है मानो आप होंडा के मैनेजमेंट से रूबरू हों, ना कि जिले के सर्वोत्तम प्रशासनिक अधिकारी से। जिलाधीश के मुताबिक फैक्टरी में तेरह शॉपस् हैं और मैनेजमेंट ट्रांस्पोर्ट पर होने वाले खर्च को बचाने के लिए केवल एक शॉप की शिफ्टिंग करना चाहती है। कर्मचारियों को अन्य शॉपस् में भेज दिया गया है। उनका यह भी कहना था कि मैनेजमेंट कर्मचारियों को फैक्टरी में आने से नहीं रोक रही है। बल्कि कर्मचारी ही मैनेजमेंट के लोगों को फैक्टरी मे दाखिल नहीं होने दे रहे हैं।

जिलाधीश को इस बात पर काफी अचरज था कि कर्मचारी अपनी नौकरियों की सुरक्षा चाहते हैं। उनके मुताबिक यह सुरक्षा तो आजकल सरकारी नौकरी तक में नहीं रह गई है, फिर प्राइवेट नौकरी की क्या बिसात है "प्राइवेट तो प्राइवेट ही है। मैनेजमेंट जहां जाना चाहती है जा सकती हैं। अगर कर्मचारियों की काम करने की इच्छा है तो उन्हें काम करना चाहिए।"

श्रम आयुक्त को समस्या तो समझ में आती है परंतु अफसोस कि वे इसमें कुछ खास दखलंदाजी नहीं कर सकते क्योंकि मैनेजमेंट आखिरकार श्रम कानूनों का तो कोई उल्लंघन नहीं कर रही है। वह सिर्फ अल्यूमीनियम शॉप को वहां से शिफ्ट करना चाह रही थी न कि फैक्टरी बंद करना। और फिर ना तो वह कर्मचारियों से शॉप के साथ शिफ्ट होने की ही बात कर रही है। इस तरह उनकी नौकरियां तो सुरक्षित हैं ही। श्रम आयुक्त के मुताबिक हलफनामे पर जबरन दस्तखत लेने तथा कर्मचारियों को अंदर जाने की अनुमति ना देने के मुद्दे फिजूल के मुद्दे हैं। उन्होंने इस बात को मानने से साफ इंकार कर दिया कि मैनेजमेंट ही कर्मचारियों से हलफनामे पर जबरन दस्तखत करवाने की जिद्द में फैक्टरी में तालाबंदी किए हुए है। जबकि हलफनामे का मसौदा कर्मचारियों की जीविका को बचाने के प्रयासों तथा संघर्षों पर सीधी चोट करता है, श्रम आयुक्त के मुताबिक दोनों के बीच मुख्य मुद्दा शॉप की शिफ्टिंग है, जिस पर कर्मचारियों को समझौते का रुख इख्तियार कर लेना चाहिए। उनके अनुसार यूनियन इस मुद्दे पर बेवजह अड़ियल रुख अपनाए हुए है। उन्होंने इस बात की तरफ इशारा किया कि वे अभी के लिए संबंधों को सुधारने का प्रयास कर सकते हैं। लेकिन देर सबेर अल्यूमीनियम शॉप की शिफ्टिंग को तो होनी ही है। इसे अधिक से अधिक दो-तीन महीनों के लिए ही टाला जा सकता है। उनका यह भी मानना है कि अगर फैक्टरी मालिकों पर अधिक दबाव डाला जाता है तो वे फैक्टरी में ताला लगाकर कहीं और का रूख कर लेगें।

यहां जो बात अधिक चौंकाने वाली है वह यह कि तमाम सरकारी अफसर यह मानते

सुझाव आमंत्रित है

आज से तकरीबन 15 वर्ष पहले, पश्चिम में मैनेजमेंट गुरूओं ने लागत घटाने, मजदूरों से अधिक तेजी से काम करवाने, और वेस्ट व रिजेक्टस कम करने के नए तरीकों का आविष्कार किया। इन सब उपलब्धियों को प्राप्त करने का मूल आधार था मजदूरों की भागीदारी, जो अमरीकी और जापनी कम्पनियों का नया मंत्र बन गया।

ऐसी ही दो स्कीमें पिछले कुछ वर्षो से होंडा पॉवर प्रोडक्टस में भी चली आ रही है। इनमें से पहली है "क्वालिटी सर्कल", जिसका लक्ष्य है उत्पाद की क्वालिटी को बेहतर बनाना और नए मजदूरों को ट्रेनिंग देना। सप्ताह में एक दिन परमानेंट कर्मचारियों की शिफ्ट समाप्त होने के बाद, इसी गतिविधि में भाग लेने के लिए, आधे घंटे तक रोक कर रखा जाता है। सात से दस कर्मचारियों की टीमें निर्धारित की जाती है। उन्हें क्वालिटी बेहतर बनाने के प्रोजक्ट्स तैयार करने को कहा जाता है। तीन महीने बाद इनकी प्रस्तुति की जाती है, और एक लम्बी प्रक्रिया के पश्चात मैनेजमेंट तीन सर्वश्रेष्ठ टीमों का चयन करती है। सर्वोत्तम टीम के दो कर्मचारियों को होंडा के वार्षिक सम्मेलन के लिए विदेश भेजा जाता है।

यह "क्वालिटी पार्टिसिपेशन प्रोग्राम" मजदूरों को उत्पाद और कम्पनी का भाग होने का एहसास दिलाने में सहायक होते हैं। लेकिन यह असहमति और विरोध पर अंकुश लगाने और सहमति हाँसिल करने के तरीके भी है। इसके अतिरिक्त इन गतिविधियों का लक्ष्य ही कम्पनी की लागत को कम करना है। उन्ही सुझावों को पुरस्कृत किया जाता है जिनसे कम्पनी की अधिकतम बचत होती है। होंडा के कर्मचारी इन हथकण्डों के पीछे छुपी असलियत को पहचान चुके हैं। हाल के विवाद से कुछ महीनों पहले उन्होंने क्वालिटी सर्कल की मीटिंगों में जाना बंद कर दिया था। दूसरी स्कीम के तहत कर्मचारियों को, उत्पादन प्रक्रिया को बेहतर बनाने वाले तकनीकी सुझाव, व्यक्तिगत स्तर पर देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। उपयोगी सुझावों को अमल में लाया जाता है। पुरस्कार की राशि अधिकांशत: 50 रूपए से 200 रूपए के बीच होती है। इसके अतिरिक्त उस कर्मचारी का नाम फैक्टरी में एक बोर्ड पर लिखा जाता है।

पिछले बारह वर्षों में तकरीबन 150 सुझावों को अमल में लाया गया है, यानि तकरीबन एक सुझाव प्रति महीना की औसत से। इनमें से कुछ सुझाव इस प्रकार है -- 1993-94 में वेल्ड शॉप के एक वर्कर के सुझाव के चलते फ्यूल सब-टैंक की वेल्डिंग में लगने वाले समय में एक चौथाई कटौती हुई। परन्तु उसे दिए गए पुरस्कार के तौर पर मात्र 150 रूपए। प्रेस शॉप के एक कर्मचारी ने एक ऐसा डिजाइन तैयार किया जिससे धातु की प्रत्येक चादर से चार पीस उपलब्ध होने लगे। उस समय तक प्रयोग किए जा रहे डिजाइन से केवल तीन ही पीस काटे जा सकते थे। उसे इनाम के तौर पर मिले 2,250 रूपए, जो कर्मचारियों के अनुसार आज तक की सबसे ऊँची पुरस्कार राशि है। पेंट शॉप के एक मजदूर ने एक ट्रॉली का आविष्कार किया जो कि पेंट चिप्स को फ्यूल टैंक में गिरने से रोककर, कार्ब्यूरेटर को ब्लॉक होने से बचाती है इस सुझाव से रिजेकशन की दर 70 प्रतिशत घट गई। इस सुझाव के लिए उसे कुल 200 रूपए बतौर इनाम मिले। आल्टरनेटर शॉप के कुछ कर्मचारियों ने अर्थिंग और क्लैंपिंग के लिए दो बोल्टों के बजाय एक बोल्ट का इस्तेमाल करने का सुझाव दिया। इनाम के तौर पर उन्हें 50 रूपए मिले।

इस तरह के सुझावों से कम्पनी के मुनाफों में काफी बढोतरी हुई है। लेकिन मजदूरों को बाहर का रास्ता दिखाते समय कम्पनी इस पहलू को ध्यान में नहीं रखने वाली। मजदूरों के सुझावों से कम्पनी की सालाना बचत हुई है, लेकिन इसके एवज में वह उन्हें पुरस्कार के रूप में कुछ रत्तीभर राशि ही देती है। यह राशि इतनी छोटी होती है कि कुछ मजदूर तो सुझाव राशि का तिरस्कार कर, ऐसे ही अपनी सलाह दे देते है। पर बात केवल पुरस्कार राशि की नहीं है। क्वालिटी बेहतरी स्कीमों का नतीजा बहुत बार यह होता है कि मजदूरों को पहले की तुलना में ज्यादा तेजी से और ज्यादा दबाव की स्थिति में काम करना पड़ता है। यह वेल्ड शॉप के उदाहरण से स्पष्ट है। और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस तरह की स्कीमों के विस्तृत शोध से ज्ञात हुआ है कि मजदूर भागीदारी कार्यक्रम द्वारा मैनेजमेंट का उद्देश्य केवल मजदूरों की काबलियत का फायदा उठाना ही नहीं, बल्कि उनकी तादाद में कटौती करना भी होता है।

हैं कि निजी कंपनियों को अपनी मनमानी करने का पूरा अधिकार है और इसमें सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती। 3 अप्रैल को आयोजित श्रम सचिव की एक महत्वपूर्ण मीटिंग में इसी बात को दोहराया गया, जिसमें श्रम आयुक्त, जिलाधीश, पुलिस सुपरिंटेंडेंट, सिटी मजिस्ट्रेट, मैनेजमेंट तथा यूनियन भी शामिल थीं। श्रम सचिव ने यूनियन को बताया कि कंपनी के लिए यह पूरी तरह से तार्किक है कि वह वहीं जाए जहां उत्पादन में उसकी सबसे कम लागत आती हो। और यह कि कर्मचारियों को मशीनरी की शिफ्टिंग में मैनेजमेंट की मदद करनी चाहिए। सरकारी अफसरों ने भी मैनेजमेंट की ही बात दोहराई कि इस साल पचास और कर्मचारियों की नियुक्ति की जाएगी। हालांकि इस दावे का कोई आधार नहीं है। सरकारी अफसरों ने तो यूनियन को यह धमकी तक दे डाली कि इस बार शिफ्टिंग में अगर कोई रूकावट लाने की कोशिश की गई तो शक्ति का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। यूनियन ने उत्तरांचल के मुख्यमंत्री को इसमें हस्तक्षेप करने के लिए लिखा है। ताकि शिफ्टिंग तथा तालाबंदी को रोका जा सके और जिन मशीनों के कलपुर्जे खोल दिए गए हैं उन्हें दुबारा पहले की तरह फिट किया जाए। इस दरख्वास्त का अभी तक कोई जवाब नहीं आया है।

कुछ अंतिम टिप्पणियां

इस रिपोर्ट का मकसद इस बात पर ध्यान दिलवाना है कि अल्यूमीनियम शॉप की शिफ्टिंग एक व्यापक प्रक्रिया का हिस्सा है। ये सभी प्रक्रियाएं होंडा में मौजूद हैं : कम्पोनेंट्स और अन्य उत्पादन संबंधी प्रक्रियाओं को बाहर की छोटी कंपनियों से करवाना, जहां असंगठित मजदूर बहुत कम वेतन पर काम करते हैं तथा साल भर चलने वाले कामों में ठेका प्रथा की बढ़ौतरी। इस विवाद के केंद्र में वे नए तरीके हैं जिनके जरिए पूंजी अपने आप को संगठित करती है तथा उत्पादन को पुनः संगठित कर हर जगह मजदूरों के लिए जिंदगी को बदतर बनाती चली जाती है।

इन मजदूरों ने अपनी जिंदगी के बेहतरीन साल, कुशलता तथा विचार होंडा कंपनी को दिए हैं और जिनकी बदौलत होंडा ने साल दर साल मुनाफा कमाया है। पूंजी को एक जगह से दूसरी जगह पर शिफ्ट करने से कर्मचारियों के हितों की उपेक्षा होती है। हालांकि एक वर्ग विशेष पर जिस तरह से प्रहार किया जा रहा है ऐसी स्थिति में इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं रह जाता कि उत्पादन के बदलते तरीकों और उत्पादन की जगहों को तय करने में मजदूरों की राय की कोई अहमियत नहीं रहती। उनके पास एक ही हथियार बचा रह जाता है और वह है सामूहिक कार्यवाही। वह सामूहिक कार्यवाही क्या हो यह उस समय की स्थिति तय करती है। जहां बहुराष्ट्रीय पूंजी लगी होती है जैसे की होंडा के संदर्भ में वहां सबसे महत्वपूर्ण निर्णय, जिसमें शॉप या प्लांट की शिफ्टिंग भी शामिल है, किसी दूर

दराज के शहर या दफ्तरों में लिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में फैक्टरी के गेट पर हो रहे संघर्ष का प्रभाव सीमित हो जाता है।

केंद्रीय और राज्य सरकारें कंपनियों को सभी तरह के फायदे मुहैया कराती हैं जैसे टैक्स में छूट, कम विकसित क्षेत्रों में पूंजी निवेश के लिए प्रोत्साहन, इत्यादि। इस तरह की छूटें देने का मकसद क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाना भी होता है, लेकिन कंपनियां इन सभी फायदों को उठाने के बाद ऐसे क्षेत्रों में जाने की फिराक में लग जाती हैं जहां उन्हें फिर से इस तरह के फायदे प्राप्त हों और फिर वे नए सिरे से सस्ते श्रम और असंगठित मजदूरों के बीच काम कर अपने मुनाफे के अनुपात को बढ़ा सकें।

इस पूरी प्रक्रिया में जो मजदूर पीछे छूट जाते हैं उन्हें एक इस्तेमाल की गई टूथपेस्ट की ट्यूब की तरह फेंक दिया जाता है। 40-45 साल की ढलती उम्र में वे एक बार फिर सड़क की खाक छानने को मजबूर हो जाते हैं।

हम माँग करते हैं कि :

1. **अल्यूमीनियम फैक्टरी की शिफ्टिंग को रोका जाए तथा काम दुबारा से शुरू हो,**
2. **निकाले गए कर्मचारियों को दुबारा से बहाल किया जाए,**

प्रकाशक: सचिव, पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक राइट्स, दिल्ली और वर्कर्स सोलिडेरिटी

प्रतियों के लिए: शर्मीला पुरकायस्थ, फ्लैट न. 5, मिरांडा हाउस स्टाफ क्वार्टरस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007
नागराज आड्वे, 179, हौज़ खास अपार्टमेंटस, ओरोविन्दो मार्ग, नई दिल्ली - 110016

सहयोग राशि: 1 रुपया

मुद्रक: हिन्दुस्तान प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली - 110032